

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 13: भगवान् का वराह अवतार

13 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जब नवसृजित पृथ्वी कारण-सागर में डूब जाती है और ब्रह्मा स्वयं को उसे बचाने में असमर्थ पाते हैं, तब भगवान् तर्क से नहीं अपितु कर्म से उत्तर देते हैं — ब्रह्मा के ही नासिका-छिद्र से एक लघु शूकर के रूप में प्रकट होकर, क्षणभर में पर्वत के समान विशाल होकर, तथा अथाह जल में प्रवेश करके संसार को अपने ही दाँतों पर उठा लेते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। तृतीय पुस्तक का त्रयोदश अध्याय सृष्टि के दर्शन से भागवत की सबसे प्रिय तथा नाटकीय कथाओं में से एक की ओर मुड़ता है। विदुर, मैत्रेय द्वारा अब तक कही गई सम्पूर्ण कथा के पश्चात् भी श्री कृष्ण की कथाओं के लिए उत्सुक, एक सरल प्रश्न पूछते हैं: स्वायम्भुव मनु, पृथ्वी के प्रथम सम्राट्, ने ब्रह्मा से रानी तथा राज्य प्राप्त करने के पश्चात् क्या किया? उत्तर एक स्वाभाविक, अविलम्बित मार्ग से आगे बढ़ता है — पिता के आशीर्वाद से पुत्र को, फिर एक भयावह खोज तक — कि मनु को शासन करने के लिए सौंपी गई पृथ्वी स्वयं कारण-जल के नीचे डूबी हुई है — और वहाँ से भागवत के सबसे सजीव तथा प्रिय प्रसंगों में से एक तक: भगवान् का वराह अवतार, जो ब्रह्मा की नासिका से अंगूठे के आकार में प्रकट होकर, क्षणभर में पर्वत के समान विशाल हो जाते हैं, प्रलय के अथाह सागर में प्रवेश करते हैं, तथा डूबी हुई पृथ्वी को अपने चमकते श्वेत दाँतों की नोकों पर सुरक्षित उठा लेते हैं — मार्ग में, अपने विरोध में आने वाले दैत्य हिरण्याक्ष को लगभग क्रीड़ा-भाव से समाप्त करते हुए।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 13 (त्रयोदश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् का वराह अवतार
- मुख्य वक्ता: विदुर (प्रश्नकर्ता), श्रीशुक (राजा परीक्षित के प्रति बाह्य कथावाचक), मैत्रेय (विदुर के प्रति आन्तरिक कथावाचक), स्वायम्भुव मनु, ब्रह्मा, तथा जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक के ऋषिगण (जो अध्याय की केन्द्रीय स्तुति अर्पित करते हैं)
- अध्याय के भीतर मुख्य श्रोता: विदुर, मैत्रेय की कथा सुनते हुए
- मुख्य स्थल: सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा का दरबार, तथा तत्पश्चात् प्रलय का वह विशाल सागर जिसमें पृथ्वी डूब गई है
- मुख्य विषय: स्वायम्भुव मनु को पृथ्वी पर शासन करने का भार सौंपना; पृथ्वी के कारण-जल में डूबे होने की खोज; ब्रह्मा की नासिका से भगवान् के वराह-रूप का प्रकट होना तथा उसकी वृद्धि; वराह का सागर में प्रवेश, दाँतों पर पृथ्वी का उद्धार, दैत्य हिरण्याक्ष का वध, तथा ऋषियों की वह विस्तृत स्तुति जो वराह के शरीर को सम्पूर्ण वैदिक यज्ञ-तन्त्र के साथ पहचानती है
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 13, श्लोक 1–50 (गीता प्रेस क्रमांक)
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

विदुर की पुनः जिज्ञासा

अध्याय शान्तिपूर्वक आरम्भ होता है, लगभग एक महान् शिक्षा तथा आगे आने वाली कथा के मध्य सेतु के रूप में। मैत्रेय से सृष्टि-कार्य में ब्रह्मा की कठिनाइयों तथा स्वायम्भुव मनु और उनकी रानी शतरूपा के अन्ततः प्रकट होने का वृत्तान्त सुनने के पश्चात्, विदुर — जिन्हें यहाँ उस आत्मा के रूप में वर्णित किया गया है जिसे कभी स्वयं श्री कृष्ण के चरणों को अपनी गोद में धारण करने का सम्मान प्राप्त हुआ था — सन्तुष्ट नहीं हो पाते। वे मैत्रेय से, स्पष्ट श्रद्धा के साथ, पूछते हैं कि मनु ने अपने हृदय के अनुरूप पत्नी प्राप्त करने के पश्चात् क्या किया: पृथ्वी के इस प्रथम सम्राट् ने, जिन्होंने भगवान् विष्णु की शरण ली थी, आगे क्या किया? विदुर अपने प्रश्न को अपनी ही एक शिक्षा के साथ प्रस्तुत करते हैं: कि

मनुष्यों द्वारा दीर्घ तथा कष्टप्रद प्रयास से अर्जित समस्त ज्ञान का सर्वोच्च पुरस्कार केवल यही है — उन लोगों की स्तुति सुनना जिन्होंने भगवान् के कमल-चरणों को अपने हृदय में स्थापित कर लिया है। इस स्पष्ट भक्ति से प्रभावित होकर, तथा भगवान् की कथाएँ पुनः सुनाने के विचार मात्र से रोमांचित होकर, मैत्रेय आरम्भ करते हैं।

ब्रह्मा का आशीर्वाद और मनु का दायित्व

मैत्रेय का उत्तर नाटक से नहीं, अपितु पिता द्वारा पुत्र को दिए गए निर्देश की शान्त गरिमा से आरम्भ होता है। स्वायम्भुव मनु, शतरूपा के साथ, हाथ जोड़कर ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित होते हैं और वही प्रश्न पूछते हैं जो कोई भी कर्तव्यनिष्ठ सन्तान अपने माता-पिता से पूछ सकती है: आप ही हमारे एकमात्र पिता हैं, हमारे जनक तथा पालक — हम आपकी किस प्रकार सेवा कर सकते हैं? ब्रह्मा का उत्तर उष्ण तथा तत्काल है। वे इस दम्पति को आशीर्वाद देते हैं, प्रसन्न होते हुए कि मनु ने बिना किसी छल के अपनी इच्छा से स्वयं को उन्हें समर्पित किया है, और मनु के कर्तव्य को कुछ स्पष्ट रेखाओं में प्रस्तुत करते हैं: धर्मपूर्वक पृथ्वी पर शासन करो, यज्ञों के माध्यम से परम पुरुष की उपासना करो, योग्य सन्तान उत्पन्न करो, तथा सबसे बढ़कर प्रजा का भली-भाँति पालन करो — क्योंकि यह अपनी प्रजा की निष्ठापूर्वक देखभाल से ही है कि भगवान् हरि तुमसे प्रसन्न होंगे। ब्रह्मा एक चेतावनी भी जोड़ते हैं, तथा इसे केवल एक आकस्मिक टिप्पणी के रूप में नहीं, अपितु एक मूल सिद्धान्त के रूप में कहते हैं।

येषां न तुष्टो भगवान् यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ।

तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥ १३ ॥

yeṣāṁ na tuṣṭo bhagavān yajña-liṅgo janārdanaḥ teṣāṁ śramo hy apārthāya yad ātmā nādṛtaḥ svayam

अर्थ: जो कोई भी भगवान् जनार्दन को, जो स्वयं यज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं, प्रसन्न करने में असफल रहता है, वह व्यर्थ परिश्रम करता है — चाहे वह परिश्रम कितना ही विशाल क्यों न प्रतीत हो — क्योंकि इस प्रकार, बिना जाने, वह अपनी ही सच्ची आत्मा की उपेक्षा करता है। (स्कन्ध 3, अध्याय 13, श्लोक 13)

यह मनु के दायित्व में जोड़ी गई कोई छोटी चेतावनी मात्र नहीं है; यह वही मूल सिद्धान्त कहती है जिसे शेष अध्याय आगे नाटकीय रूप से प्रस्तुत करता है। मनु का राज्य-शासन, ब्रह्मा द्वारा अभी वर्णित किए जाने वाले प्रत्येक अन्य कार्य की भाँति, अपने आप में कोई मूल्य नहीं रखता — केवल इसमें कि वह उस भगवान् को प्रसन्न करता है या नहीं जो उसका छिपा हुआ प्रयोजन है। यही सत्य इस अध्याय की आगे आने वाली ऋषियों की स्तुति के मूल में भी है: जब वे यज्ञ की सम्पूर्ण संरचना को अंग-प्रत्यंग शूकर के शरीर पर आरोपित करते हैं, तब वे केवल एक उद्धारकर्ता अवतार की प्रशंसा नहीं कर रहे होते, अपितु सबसे शाब्दिक ढंग से यह पुष्टि कर रहे होते हैं कि जनार्दन ही सदैव समस्त यज्ञ का वास्तविक प्रयोजन रहे हैं।

मनु बिना किसी हिचकिचाहट के इस दायित्व को स्वीकार करते हैं, केवल यह याचना करते हुए कि ब्रह्मा उन्हें तथा उनकी सन्तान को उचित निवास प्रदान करें। यहीं इस अध्याय का केन्द्रीय संकट प्रकट होता है, लगभग एक ही चौकाने वाली पंक्ति में दिया गया: पृथ्वी — समस्त जीवों का निवास-स्थान — जल की विशाल राशि में डूबी हुई है, तथा उसे पुनः प्राप्त करने के लिए कुछ किया जाना चाहिए।



ब्रह्मा, स्वायम्भुव मनु को पृथ्वी पर शासन करने का भार सौंपने के तुरन्त पश्चात्, यह जानकर व्याकुल हो जाते हैं कि पृथ्वी स्वयं कारण-जल में डूबी हुई है, तथा उद्धार के साधन के लिए अन्तर्मन में भगवान् की ओर मुड़ते हैं (श्लोक 14-17)।

वह लघु शूकर जो पर्वत के समान बढ़ गया

इस संकट के प्रति ब्रह्मा की प्रतिक्रिया स्वयं शिक्षाप्रद है। वे अपनी शक्ति अथवा बुद्धि से समस्या हल करने का प्रयास नहीं करते। इसके बजाय, यह स्मरण करते हुए कि उनका अपना विचार भगवान् के ही हृदय से उत्पन्न हुआ था, वे अपना मन भगवान् की ओर मोड़ते हैं तथा मौन प्रार्थना करते हैं कि उद्धार का कोई साधन उत्पन्न हो। ठीक इसी समर्पित चिन्तन के क्षण में — इससे पहले नहीं, तथा ब्रह्मा के अपने किसी प्रयत्न से नहीं — यह चमत्कार घटित होता है। अकस्मात्, बिना किसी चेतावनी के, एक लघु शूकर, केवल अंगूठे के अग्रभाग जितना बड़ा, ब्रह्मा की एक नासिका से प्रकट हो जाता है।

इत्यभिध्यायतो नासा-विवरात्सहसानघ ।

वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥ १८ ॥

ity abhidhyāyato nāsā-vivarāt sahasānagha varāha-toko niragād aṅguṣṭha-parimāṇakaḥ

अर्थ: जब ब्रह्मा इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे, हे निष्पाप विदुर, एक लघु शूकर — केवल अंगूठे के अग्रभाग जितना बड़ा — उनकी नासिका के छिद्र से अकस्मात् प्रकट हुआ। (स्कन्ध 3, अध्याय 13, श्लोक 18)

आगे जो होता है वह भागवत के सबसे विस्मयकारी आकार-चित्रणों में से एक है। ब्रह्मा केवल खड़े होकर देखते रहते हैं, और यह अंगूठे के आकार का प्राणी क्षणों में पहले हाथी के आकार तक, फिर एक विशाल पर्वत के आकार तक बढ़ जाता है — एक परिवर्तन जिसे स्वयं मैत्रेय “वास्तव में अत्यन्त अद्भुत” कहते हैं। ब्रह्मा, मरीचि तथा अन्य महान् ब्राह्मण, सनक तथा उनके तीन भाइयों सहित, और स्वायम्भुव मनु, इस विस्मयकारी दृश्य के चारों ओर एकत्र होकर विचार करते हैं: शूकर के वेश में खड़ा यह विचित्र प्राणी कौन हो सकता है, जो ब्रह्मा की अपनी नासिका से प्रकट हुआ है? क्या यह, वे सोचते हैं, स्वयं भगवान् विष्णु हो सकते हैं, जो उन्हें परखने अथवा शिक्षा देने आए हों? जब वे अभी भी इस प्रश्न पर विचार कर रहे होते हैं, तब पर्वत के आकार का शूकर-रूप — जो वास्तव में समस्त यज्ञों के अधिष्ठाता स्वयं भगवान् हैं — स्वयं ही

उन्हें उत्तर देते हैं, इतनी प्रचण्ड गर्जना के साथ कि दिशाएँ ही गूँज उठती हैं, ब्रह्मा तथा एकत्रित ऋषियों को प्रसन्न करते हुए और एक ही झटके में उनकी उलझन दूर करते हुए। इस गर्जना को निमन्त्रण मानकर, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक के ऋषिगण तत्काल तीनों वेदों के पवित्र मन्त्रों से भगवान् की स्तुति आरम्भ कर देते हैं — वह स्तुति जिसे भगवान्, जिनके अपने रूप की महिमा वेद गाते हैं, स्वयं वेद के रूप में ही ग्रहण करते हैं। एक और प्रचण्ड गर्जना के साथ, तथा एक श्रेष्ठ गजराज के समान क्रीड़ा करते हुए, वे देवताओं के हित में जल में प्रवेश करते हैं।



अंगूठे के अग्रभाग जितना छोटा एक शूकर अकस्मात् ब्रह्मा की नासिका से प्रकट होकर क्षणों में पर्वत के आकार तक बढ़ जाता है, ब्रह्मा, मरीचि तथा एकत्रित ऋषियों को विस्मित करते हुए (श्लोक 18-26)।

प्रलय के सागर में प्रवेश

जल में प्रवेश करने के पश्चात्, दिव्य शूकर का वर्णन अत्यधिक शारीरिक शक्ति तथा सौन्दर्य दोनों की भाषा में किया गया है। इस्पात के समान दृढ़ शरीर तथा कठोर रोमों की घनी परत से युक्त, वे आकाश में छलांग लगाते हैं, पूँछ तनी हुई तथा अयाल फहराती हुई, अपने खुरों से बादलों को चीरते हुए — तथा अत्यन्त शोभायमान होते हैं, उनके श्वेत दाँत जहाँ भी उनकी दृष्टि पड़ती है वहाँ चमक बिखेरते हैं। शूकर के वेश में होते हुए भी, ग्रन्थ हमें स्मरण कराता है, वे कोई और नहीं अपितु स्वयं भगवान् नारायण हैं, अपने ही व्यक्तित्व में समस्त यज्ञ को समाहित किए हुए; फिर भी, जब वे अपनी थूथन से पृथ्वी की खोज में सूँघते हुए घूमते हैं, अपने भयंकर दाँतों के बावजूद, वे उन ब्राह्मणों — जो उनकी स्तुति कर रहे हैं — की ओर एक कोमल तथा करुणामय दृष्टि डालते हैं, इससे पहले कि वे जल में गोता लगाएँ।

सागर स्वयं इस कथन में लगभग एक पात्र बन जाता है। हीरे के समान विशाल पर्वत जैसे शरीर के आकस्मिक गोते से चीरा हुआ, वह गर्जना करता है, अपनी ऊँची लहरों को अनेक भुजाओं की भाँति उछालते हुए, तथा — जैसा ग्रन्थ अत्यन्त सजीवता से कहता है — पुकार उठता है: “हे यज्ञपति, मेरी रक्षा करें!” निर्भय, भगवान् अपने तीक्ष्ण खुरों से जल को चीरते हुए, उस अथाह सागर के दूसरे छोर तक पहुँचते हैं, तथा वहाँ, उसकी गहराइयों में, पृथ्वी को खोज निकालते हैं — वही पृथ्वी जिसे उन्होंने स्वयं पूर्व कल्प के अन्त में अपने ही शरीर में समाहित कर लिया था, अब पुनः प्रकाश में लाई जाने की प्रतीक्षा में।



इस्पात के समान दृढ़ शरीर तथा चमकते श्वेत दाँतों से युक्त, शक्तिशाली शूकर बादलों को चीरते हुए प्रलय के गर्जते सागर में डूबी हुई पृथ्वी की खोज में गोता लगाते हैं (श्लोक 27-30)।

पृथ्वी का उद्धार, और हिरण्याक्ष का पतन

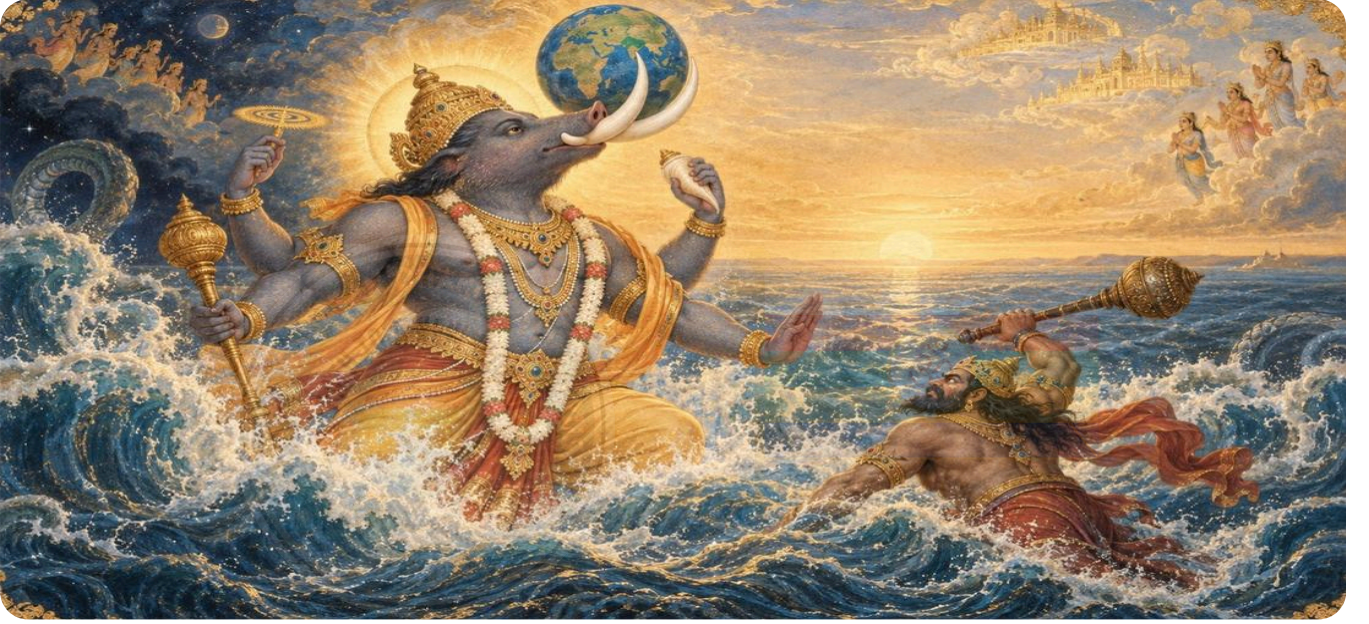
अध्याय की सर्वाधिक प्रसिद्ध घटना अब एक ही विस्तृत अंश में प्रकट होती है। भगवान् गहराई से ऊपर उठते हैं, पृथ्वी सुरक्षित रूप से उनके दाँतों की नोकों पर टिकी हुई, अद्वितीय शोभा से चमकते हुए। परन्तु जब वे अभी भी उस जल में हैं, तब असाधारण बल का एक दैत्य — नाम हिरण्याक्ष — गदा लेकर उन पर आक्रमण करता है, उनका मार्ग अवरुद्ध करने का प्रयत्न करते हुए। भगवान् की प्रतिक्रिया तत्काल तथा, उल्लेखनीय रूप से, लगभग सहज है: उनका क्रोध उनके ही चक्र सुदर्शन के समान भड़क उठता है, तथा वे उस दैत्य को उतनी ही सहजता तथा क्रीड़ा-भाव से समाप्त कर देते हैं जितनी सहजता से सिंह किसी हाथी को बिना किसी प्रयास के मार डालता है, उनकी कनपटी तथा थूथन दैत्य के रक्त से रंजित होकर, उन्हें उस गजराज की भाँति प्रतीत कराती है जिसने अभी-अभी लाल मिट्टी के एक टीले को उलट-पुलट दिया हो।

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां
स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ।
तत्रापि दैत्यं गदयापतन्तं
सुनाभसन्दीपिततीव्रमन्युः ॥ ३१ ॥
जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं
स लीलयेभं मृगराडिवाम्भसि ।
तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो
यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥ ३२ ॥

*sva-damṣṭrayoddhṛtya mahīm nimagnāṁ sa utthitaḥ saṁruruce rasāyāḥ tatrāpi daityaṁ
gadayāpatantaṁ sunābha-sandīpita-tīvra-manyuḥ jaghāna rundhānam asahya-vikramaṁ sa
līlayebhaṁ mṛgarāḍ ivāmbhasi tad-rakta-paṅkāṅkita-gaṇḍa-tuṇḍo yathā gajendro jagatīm*

अर्थ: डूबी हुई पृथ्वी को अपने दाँतों पर उठाकर, भगवान् उन जल के मध्य उठे तथा शोभायमान चमक बिखेरने लगे। वहाँ, असाधारण बल का एक दैत्य गदा लेकर उनका मार्ग अवरुद्ध करने के लिए उन पर टूट पड़ा; उनका क्रोध अपने ही चक्र के समान भड़क उठा, तथा भगवान् ने उस दैत्य को क्रीड़ा-भाव से मार डाला — जैसे सिंह बिना प्रयास किसी हाथी को मार डालता है — रक्त से सने कपोलों तथा धूथन सहित, ठीक वैसे ही जैसे किसी गजराज ने अभी-अभी लाल मिट्टी के किसी टीले को उलट दिया हो। (स्कन्ध 3, अध्याय 13, श्लोक 31-32)

जब भगवान् — तमाल वृक्ष के समान श्याम वर्ण — अपने श्वेत दाँतों की नोकों पर पृथ्वी को (जल से) उठाते हैं, मानो कोई हाथी कमल धारण किए हो, हे प्रिय विदुर, ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) तथा अन्य लोग अन्ततः उन्हें पूर्ण रूप से पहचान लेते हैं। हाथ जोड़कर, वे वैदिक मन्त्रों के अत्यन्त निकट स्तुति-गान से उनकी उपासना करते हैं — वह स्तुति जो इस अध्याय के शेष अधिकांश भाग को व्याप्त करती है।



गहराई से ऊपर उठते हुए, पृथ्वी को अपने चमकते दाँतों पर सुरक्षित उठाए हुए, भगवान् गदा लेकर मार्ग अवरुद्ध करने वाले दैत्य हिरण्याक्ष को क्रीड़ा-भाव से समाप्त कर देते हैं (श्लोक 31-32)।

ऋषियों की स्तुति: यज्ञ का साक्षात् स्वरूप शूकर

आगे जो आता है वह भागवत की सबसे विशिष्ट स्तुतियों में से एक है — अमूर्त दर्शन की स्तुति नहीं, जैसी पिछले अध्यायों में ब्रह्मा की अपनी प्रार्थना थी, अपितु शूकर के भौतिक शरीर की, अंग-प्रत्यंग, सम्पूर्ण वैदिक यज्ञ-तन्त्र के साथ अत्यन्त विस्तृत पहचान। ऋषिगण विजय के उद्घोष के साथ आरम्भ करते हैं: “जय, जय हो आपकी, हे अजेय भगवान्, यज्ञों के प्रवर्तक!” — उन्हें प्रणाम करते हुए जब वे अपने ही दिव्य शरीर को, जो स्वयं तीनों वेदों से रचित है, आर्द्रता से मुक्त करने के लिए झटकते हैं, तथा यह विस्मय व्यक्त करते हुए कि विभिन्न यज्ञ उन्हीं के रोमकूपों में छिपे हुए हैं।

ऋषय ऊचुः ।

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन

त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।

यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरद्वय-

स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ ३४ ॥

ṛṣaya ūcuḥ jitaṁ jitaṁ te 'jita yajña-bhāvana trayīm tanuṁ svām paridhunvate namaḥ yad-roma-garteṣu nililyur addhayaś tasmai namaḥ kāraṇa-sūkarāya te

अर्थ: ऋषियों ने कहा: जय, जय हो आपकी, हे अजेय भगवान्, यज्ञ के साक्षात् स्रोत तथा पालक! आपको प्रणाम, जब आप अपने ही शरीर को, जो तीनों वेदों से रचित है, झटकते हैं; जिसके रोमकूपों में स्वयं जल ने छिपने का स्थान पाया है। आपको प्रणाम, हे आदि शूकर, इस उद्धार के साक्षात् कारण। (स्कन्ध 3, अध्याय 13, श्लोक 34)

यह स्तुति फिर, श्लोक-दर-श्लोक, यज्ञ-उपासना की सम्पूर्ण संरचना को शूकर के ही रूप पर आरोपित करती है। स्वयं वेद, ऋषि कहते हैं, उनकी त्वचा में स्थान पाते हैं; पवित्र कुश उनके रोमों में; घृत उनके नेत्रों में; तथा चार प्रकार के सकाम कर्म उनके चार पैरों में। विभिन्न यज्ञ-पात्र तथा उपकरण — सुक्, सुवा, इडा, चमस, प्रासित्र, ग्रह — क्रमशः उनकी जिह्वा, नासिका, उदर, कानों, मुख तथा गले में पाए जाते हैं, जबकि उनका चर्वण-कार्य ही अग्निहोत्र, प्रतिदिन की अग्नि-आहुति, है। संसार में उनका बार-बार अवतरण स्वयं दीक्षणीय इष्टि के समान पहचाना जाता है; उनकी गर्दन उपसदों के समान; उनके दाँत यज्ञ के आरम्भिक तथा समापन कर्मों के समान; उनकी जीभ प्रवर्ग्य समारोह के रूप में; उनका सिर गार्हपत्य अग्नियों के रूप में; तथा उनके प्राण-वायु यज्ञ-वेदी के लिए ईंटों को परत-दर-परत बिछाने के कार्य के रूप में। यहाँ तक कि उनका वीर्य सोम के रूप में पहचाना जाता है, उनकी बैठने की मुद्रा दिन में तीन बार किए जाने वाले अनुष्ठानों के रूप में, उनके शरीर के सात अंग सात प्रमुख यज्ञ-वर्गों के रूप में, तथा उनके अंगों के जोड़ ही दीर्घकालीन सत्रों के रूप में। इस एकल, व्यापक पहचान में, ऋषिगण घोषित करते हैं, भगवान् अपने ही व्यक्तित्व में समस्त यज्ञ तथा क्रतु — सोम-रहित तथा सोम-सहित यज्ञ दोनों — को समाहित करते हैं, तथा, वे जोड़ते हैं, वे स्वयं वैराग्य, भक्ति तथा आत्म-संयम से प्राप्त ज्ञान हैं, वही गुरु जो समस्त प्रकार का ज्ञान प्रदान करते हैं।

शूकर के शरीर तथा उसके द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए यज्ञ के बीच के प्रत्येक तकनीकी सम्बन्ध को, मानो, समाप्त करने के पश्चात्, ऋषिगण सरल, अधिक दृश्यात्मक स्तुति की ओर मुड़ते हैं: उनके दाँतों पर टिकी पृथ्वी, वे कहते हैं, ठीक उसी प्रकार चमकती है जैसे जल से उठते हुए किसी गजराज के दाँतों पर धारण किया गया कमल-पौधा; तथा पृथ्वी को धारण किए हुए यह सम्पूर्ण शूकर-रूप उतना ही सुन्दर प्रतीत होता है जितना बादलों की राशि से मुकुटित कोई विशाल पर्वत। वे प्रार्थना करते हैं कि भगवान् पृथ्वी को — जो समस्त चर तथा अचर सृष्टि की माता है, तथा एक रहस्यमय अर्थ में उनकी स्वयं की पत्नी है — जल पर दृढ़तापूर्वक स्थापित करें ताकि वह समस्त प्राणियों के लिए निवास योग्य बन सके, क्योंकि वे ही उसके तथा उनके, दोनों के पिता हैं; और उसे इस प्रकार स्थापित करके, वे भगवान् तथा पृथ्वी दोनों की सम्मिलित उपासना करेंगे, जिसमें उन्होंने अपनी सहायक शक्ति को उसी प्रकार समाहित किया है जैसे यज्ञकर्ता पवित्र अरणि-काष्ठ में यज्ञाग्नि का आवाहन करता है।

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां
लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया
यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४२ ॥

*saṁsthāpayaināṁ jagatām sa-tasthuṣāṁ lokāya patnīm asi mātaram pitā vidhema cāsyai
namasā saha tvayā yasyām sva-tejo 'gnim ivāraṇāv adhāḥ*

अर्थ: कृपया इस पृथ्वी को दृढ़तापूर्वक स्थापित करें, हे भगवान्, समस्त चर तथा अचर प्राणियों के कल्याण के लिए, क्योंकि वह आपकी पत्नी तथा उनकी माता है, ठीक जैसे आप उनके पिता हैं। हम उसकी उपासना, श्रद्धापूर्वक, आपके साथ करेंगे — आप, जिनमें वह विश्राम करती है, ठीक जैसे अग्नि पवित्र अरणि-काष्ठ में सुप्त रहती है, आपने उसमें अपनी सहायक शक्ति समाहित की है। (स्कन्ध 3, अध्याय 13, श्लोक 42)

यह स्तुति विस्मय तथा समर्पण के भाव में समाप्त होती है: आपके अतिरिक्त और कौन, वे पूछते हैं, जल की सबसे निचली गहराइयों में डूबी हुई पृथ्वी को उठाने का साहस कर सकता था — यद्यपि, समस्त आश्चर्यों के धाम, जिन्होंने अपनी ही माया से इस अत्यन्त अद्भुत ब्रह्माण्ड की रचना की है, आपके लिए यह कोई चमत्कार ही नहीं है। यहाँ तक कि जब आपने वेद-रचित अपने शरीर को झटका, तो जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक के निवासी, वे कहते हैं, आपकी अयाल के छोर से उड़ते हुए पवित्र जल की बूँदों से भीग गए तथा पूर्णतः पवित्र हो गए। तथा अपनी अन्तिम याचना में, ऋषिगण स्वीकार करते हैं कि जो कोई भी आपके अनन्त पराक्रमों को उनकी सम्पूर्णता में जानना चाहता है, वह निश्चय ही अपनी बुद्धि खो चुका है — केवल यही याचना करते हुए कि आप उस ब्रह्माण्ड को सुख प्रदान करें जो आपकी ही योगमाया द्वारा उत्पन्न इन्द्रिय-विषयों के सम्पर्क से मोहग्रस्त है।



ब्रह्मा तथा एकत्रित ऋषिगण, भगवान् को उनके शूकर-रूप में पहचानकर, एक विस्तृत स्तुति अर्पित करते हैं जो उनके दिव्य शरीर के प्रत्येक अंग को वैदिक यज्ञ के उपकरणों, पुरोहितों तथा कर्मकाण्डों के साथ पहचानती है (श्लोक 34-45)।

पृथ्वी को पुनर्स्थापना, तथा भगवान् का अन्तर्धान

अध्याय उतनी ही शान्तता तथा शीघ्रता से समाप्त होता है जितनी शीघ्रता से इसका केन्द्रीय चमत्कार आरम्भ हुआ था। जब ऋषिगण उन्हें उन श्लोकों में स्तुति करते रहते हैं जो वैदिक स्तोत्रों के अत्यन्त निकट हैं, तब ब्रह्माण्ड के रक्षक, अब भी अपने शूकर-रूप में, धीरे से पृथ्वी को जल की सतह पर रख देते हैं — वही जल जो क्षणों पूर्व उनके ही खुरों का भार वहन कर रहा था। इस प्रकार, स्पष्ट क्रीड़ा तथा सहजता के साथ, उस पृथ्वी को रखकर जिसे उन्होंने सागर की गहराइयों से उठाया था, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि, समस्त प्राणियों के रक्षक, सहज ही दृष्टि से ओझल हो जाते हैं।

मैत्रेय, जैसा भागवत में सदैव प्रथा है, अध्याय को इस कथा के श्रवण के फल का कथन करते हुए समाप्त करते हैं: भगवान् जनार्दन शीघ्र तथा गहराई से उससे प्रसन्न होते हैं जो श्रीहरि की इस आनन्दमय तथा मनोहर कथा को भक्तिपूर्वक सुनता अथवा कहता है, एक ऐसी कथा जिसका स्मरण मात्र सुनने वाले को शोक तथा पाप से मुक्त कर देता है, तथा जिसकी प्रत्येक क्रीड़ा-लीला बार-बार वर्णन करने योग्य है। मैत्रेय पूछते हैं, आखिर क्या दुर्लभ रह जाता है जब वह भगवान् जो हमारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर सकते हैं, सचमुच प्रसन्न हो जाएँ? क्षुद्र वरदान, वे सुझाव देते हैं, खोजने योग्य ही नहीं हैं, क्योंकि सर्वोच्च भगवान्, जो समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान हैं, स्वेच्छा से अपना सर्वोच्च पद उन्हें प्रदान करते हैं जो अपना मन पूर्णतः उन्हीं पर केन्द्रित करते हैं। तथा अध्याय के अन्तिम श्लोक में, मैत्रेय एक ऐसा प्रश्न उठाते हैं जो इस कथा से कहीं आगे तक गूँजता रहता है: अपने ही कानों के प्याले से भगवान् की कथाओं के अमृत को — जो समस्त प्राचीन गाथाओं में से निचोड़ा हुआ सार है, तथा जो अकेला ही जन्म-मृत्यु के चक्र को समाप्त कर सकता है — एक बार पी लेने के पश्चात्, कौन, यदि वह मनुष्य से भिन्न न हो, कभी यह अनुभव कर सकता है कि उसने पर्याप्त सुन लिया है?

को नाम लोके पुरुषार्थसारवि-
त्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-
महो विरज्येत विना नरेतरम् ॥ ५० ॥



*ko nāma loke puruṣārtha-sāravit purā-kathānām bhagavat-kathā-sudhām āpiya karṇāñjalibhir
bhavāpahām aho virajyeta vinā naretaram*

अर्थ: इस संसार में कौन, जो जीवन के सार्थक लक्ष्यों के सार को वास्तव में जानता है, भगवान् की कथाओं के उस अमृत के प्रति कभी उदासीन हो सकता है — समस्त प्राचीन गाथाओं में से मथकर निकाला गया वह नवनीत, जन्म-मृत्यु के चक्र को समाप्त करने में सक्षम — एक बार जब उसने इसे अपने ही कानों के प्याले से पी लिया हो, जब तक कि वह मनुष्य से भिन्न न हो? (स्कन्ध 3, अध्याय 13, श्लोक 50)



उद्धार की गई पृथ्वी को जल की सतह पर धीरे से रखकर, दिव्य शूकर, अपना उद्धार-कार्य पूर्ण करके, शान्तिपूर्वक दृष्टि से ओझल हो जाते हैं (श्लोक 46-47)।

इस प्रकार तृतीय पुस्तक के महान् एवं गौरवशाली भागवत-पुराण, जो परमहंस-संहिता के नाम से भी जाना जाता है, में, अन्य बातों के साथ वराह अवतार का वर्णन करने वाला, त्रयोदश अध्याय समाप्त होता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. उद्धार समर्पण से आरम्भ होता है, आत्म-प्रयास से नहीं। ब्रह्मा डूबती हुई पृथ्वी को बचाने की कोई अपनी योजना नहीं बनाते; वे केवल अपना मन भगवान् की ओर मोड़ते हैं, जिनके हृदय से उनका अपना विचार पहले उत्पन्न हुआ था — और ठीक उसी समर्पित चिन्तन के क्षण में शूकर-रूप प्रकट होता है (श्लोक 16-18)।
2. दिव्य शक्ति क्रमशः, फिर अकस्मात् प्रकट होती है। भगवान् का शूकर-रूप अंगूठे के अग्रभाग जितना छोटा आरम्भ होता है तथा क्षणों में पर्वत के आकार तक बढ़ जाता है — यह एक सजीव चित्र है कि कृपा पहली दृष्टि में कितनी विनम्र प्रतीत हो सकती है, इससे पहले कि उसकी सच्ची विशालता प्रकट हो (श्लोक 18-19)।
3. भगवान् की लीला में कोई वास्तविक प्रयत्न नहीं है। हिरण्याक्ष का आक्रमण, चाहे कितना ही भयंकर वर्णित हो, भगवान् द्वारा “क्रीड़ा-भाव” से समाप्त कर दिया जाता है, ठीक जैसे सिंह बिना प्रयास हाथी को मार डालता है — यह स्मरण कराते हुए कि दिव्य उद्देश्य के मार्ग में कोई भी बाधा वास्तव में उसे कभी संकट में नहीं डाल सकती (श्लोक 32)।
4. यज्ञ, सही रूप में समझा जाए तो, भगवान् से पृथक् नहीं है — वह उन्हीं का शरीर है। ऋषियों की स्तुति केवल पृथ्वी के उद्धार के लिए शूकर की प्रशंसा नहीं करती; वह वैदिक यज्ञ के प्रत्येक तत्त्व को, सबसे छोटे यज्ञ-पात्र तक, उनके भौतिक रूप के किसी विशिष्ट अंग के साथ पहचानती है, यह शिक्षा देते हुए कि प्रत्येक सच्चा धार्मिक अनुष्ठान स्वयं उन्हीं की ओर निर्देशित उपासना का कार्य है (श्लोक 35-39)।
5. पृथ्वी स्वयं पवित्र है — एक साथ माता, पत्नी, तथा आश्रित। ऋषियों की प्रार्थना भगवान् से पृथ्वी को “समस्त चर तथा अचर प्राणियों के कल्याण के लिए” दृढ़तापूर्वक स्थापित करने की याचना करती है, उसे सृष्टि की माता कहकर सम्बोधित करती है तथा भगवान् के साथ उसके सम्बन्ध का सर्वाधिक आत्मीय शब्दों में वर्णन करती है — भागवत की विश्व-दृष्टि में पृथ्वी की अपनी पवित्रता की एक उल्लेखनीय पुष्टि (श्लोक

6. भक्तिपूर्वक भगवान् की कथाएँ सुनना स्वयं सर्वोच्च प्राप्ति है। भागवत के अनेक अन्य अध्यायों की भाँति, यह अध्याय भी घटना से निकाले गए किसी नैतिक उपदेश से नहीं, अपितु स्वयं सुनने तथा सुनाने के कार्य की प्रशंसा से समाप्त होता है — यह पूछते हुए कि इस अमृत का स्वाद लेने के पश्चात् कौन कभी अनुभव कर सकता है कि उसने पर्याप्त सुन लिया है (श्लोक 48-50)।

7. कर्तव्य का कोई मूल्य नहीं जब तक वह भगवान् को प्रसन्न न करे। ब्रह्मा मनु को स्पष्ट चेतावनी देते हैं: यज्ञ-स्वरूप भगवान् को असन्तुष्ट छोड़कर किया गया कोई भी परिश्रम व्यर्थ है, क्योंकि ऐसा करने वाला वस्तुतः अपनी ही सच्ची आत्मा की उपेक्षा करता है — वही सिद्धान्त जिसकी पुष्टि आगे ऋषियों की स्तुति सबसे शाब्दिक ढंग से करती है, यज्ञ के सम्पूर्ण स्वरूप को शूकर के अपने ही शरीर के साथ पहचानकर (श्लोक 13)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के स्वरूप में कुछ ऐसा शान्तिदायक है, विशेष रूप से उस किसी के लिए जिसने कभी अनुभव किया हो कि उसके समक्ष खड़ी समस्या अपनी ही शक्ति से हल करने के लिए बहुत विशाल है। ब्रह्मा, स्वयं ब्रह्माण्ड के वास्तुकार, यह खोजते हैं कि जिस संसार का शासन-भार उन्हें सौंपा गया है वह एक ऐसे सागर में डूबा हुआ है जिसे वे अपनी शक्ति से विभाजित नहीं कर सकते — और उनकी प्रतिक्रिया न तो घबराहट है, न ही किसी तकनीक की उन्नत खोज, अपितु उस स्रोत की ओर मन का एक शान्त मुड़ना है जहाँ से उनका अपना विचार पहले उत्पन्न हुआ था। जो उन्हें उत्तर देता है वह शब्दों में दी गई कोई योजना नहीं, अपितु एक कर्म है: एक ऐसा रूप, विनम्र भी, तथा क्षणों में विशाल भी, जो बिना किसी हिचकिचाहट के उन्हीं जल में गोता लगा देता है जो असंभव प्रतीत होते थे। यहाँ उस रूप के विषय में एक शिक्षा है जो दिव्य सहायता प्रायः धारण करती है — आरम्भ में लघु, अनदेखी करने योग्य, तथा केवल पश्चात् में अपनी सच्ची विशालता में प्रकट होती हुई; तथा उस सहजता, यहाँ तक कि क्रीड़ा-भाव, के विषय में जिसके साथ हमें पर्वत जैसी प्रतीत होने वाली बाधा को भी दूर कर दिया जाता है, एक बार जब कृपा वास्तव में इस दृश्य में प्रवेश कर जाती है। ऋषियों की दीर्घ स्तुति, इस बीच, एक पूरक शिक्षा प्रस्तुत करती है: कि पवित्रता केवल मन्दिर के अनुष्ठानों तथा वैदिक सूत्रों तक सीमित नहीं है, अपितु, यदि कोई भक्तिपूर्वक देखे, तो हमारे चारों ओर के संसार के हर तत्त्व में छिपी पाई जा सकती है — सृष्टि का प्रत्येक अंश, सही रूप में देखा जाए तो, पहले से ही उपासना का एक साधन है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब आपके समक्ष कोई कठिनाई किसी सागर जितनी विशाल तथा अनियन्त्रित प्रतीत हो, तो उसे पूर्णतः अपनी शक्ति से हल करने का प्रयत्न करने से पहले रुकें। अपने मन को, चाहे क्षणभर के लिए ही सही, उस स्रोत की ओर मोड़ें जहाँ से आपकी अपनी सोचने-समझने तथा कार्य करने की क्षमता पहले उत्पन्न हुई थी, तथा उसी सहायता के लिए सच्चाई से याचना करें जो केवल कृपा ही दे सकती है — यह विश्वास करते हुए कि जब उत्तर आएगा, वह अपनी सच्ची विशालता प्रकट करने से पहले लघु तथा अनदेखा प्रारम्भ हो सकता है। ऐसा करते हुए, स्मरण रखें कि कोई भी बाधा, चाहे कितनी ही भयंकर प्रतीत हो, उस कृपा की पहुँच से परे नहीं है। अपना कार्य आरम्भ करने से पहले, रुकें और शान्तिपूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को अपनी ही छोटी भेंट बनने दें, ऋषियों की उस स्तुति की प्रतिध्वनि जिसने उनके समक्ष खड़े संसार के सबसे छोटे विवरणों में भी पवित्रता को खोज निकाला था।

निष्कर्ष

तृतीय पुस्तक का त्रयोदश अध्याय, अनेक अर्थों में, भागवत का उस प्रश्न के प्रति अपना ही उत्तर है जो प्रत्येक पाठक अन्ततः पूर्ववर्ती अध्यायों के दार्शनिक सघनता के पश्चात् पूछता है: दिव्य कृपा वास्तव में गतिशील रूप में कैसी दिखाई देती है? यहाँ, उत्तर सिद्धान्त के रूप में नहीं अपितु कथा के रूप में आता है — पुत्र को पिता का आशीर्वाद, एक रानी की खोई हुई पृथ्वी, एक अंगूठे के आकार का शूकर जो पर्वत के आकार तक बढ़ता है, एक दैत्य जो बिना वास्तविक प्रयास के समाप्त कर दिया जाता है, तथा एक स्तुति जो शूकर के अपने ही शरीर में सम्पूर्ण पवित्र कर्मकाण्ड को खोज निकालती है। यह अध्याय अपने पाठक से इससे अधिक जटिल कुछ नहीं माँगता कि वह ब्रह्मा के भगवान् की ओर शान्त मुड़ने में तथा ऋषियों की उमड़ती हुई स्तुति में उसी मुद्रा को देखे जिसे प्रत्येक निष्ठावान् साधक अन्ततः अपनाता है: अपनी ही सीमाओं को ईमानदारी से पहचानना, तथा यह विश्वास करना कि जो असंभव रूप से विशाल प्रतीत होता है, वह उस भगवान् के लिए, जिन्होंने कभी डूबी हुई पृथ्वी को अपने ही दाँतों पर उठा लिया था, कोई वास्तविक चमत्कार ही नहीं है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा श्रेय

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय पुस्तक, त्रयोदश अध्याय, आन्तरिक पृष्ठ 190–194।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सार के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका की प्रतिलिपि नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता या समर्थन निहित नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-13-lords-descent-divine-boar-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट